भूमिका।



द्विरागमन तथा वधूप्रवेश को लेकर कभी कभी इस देश के पण्डितों में बहुत विवाद उपस्थित हो जाता है तथा बहुत से आधुनिक पण्डित शास्त्र रीति तथा देशरीति को न जान कर मनमाना कार्य भी कर बैठते हैं एवं बहुत से अल्पज्ञ अपनी प्रतिष्ठा बढाने के लिये प्रायः शुद्ध इष्टकाल को भी अशुद्ध बना देते हैं तथा लग्न को भी अशुद्ध कर देते हैं उसी प्रकार दत्तक मुहूर्त क्या वस्तु है इस बिचार के लिए विचारालय का आश्रय लेना बहुधा इस देश में देखा जाता है। इन बातों को विचारकर जिस में इस देश के वासी मिथ्या भ्रम में न पड़ें और शास्त्र के सिद्धान्तों को जानें इसके लिए मैंने इन व्यवस्थावों को हिन्दी में बना कर देश भाइयों की सेवा में निवेदन किया है। यदि कोई अपनी प्रथा का पालन करता हो तो उसके लिए मुझे आग्रह नहीं है। देश प्रेमी शास्त्रीय वस्तु को जानकर सन्मार्ग मे प्रवृत्त हों तथा उससे लाभ उठावें यही मेरा ईश्वर से प्रार्थना है।

निवेदक—

रामयत्न ओझा।

अथ द्विरागमन व्यवस्था

जब मैंने पाठशाला की पढ़ाई छोड़ी और श्री गुरू भगवान् की दयासे कई कारणों वस कर्मक्षेत्र में आया- उस समय नित्यही कई व्यवस्था गुरू भगवान के दरवार में वन जाती थी यह देखकर मेरे मन में भी उत्साह हुवा कि द्विरा गमन की एक व्यवस्था अच्छी बनाऊं। यह सोचकर इस कार्य में लगा। उस समय केवल मुहूर्त चिन्तामणि में वधू प्रवेश और द्विरा गमन नामक प्रकरणों को देखकर और इधर उधर की बातों को सुनकर मेरे मन भी यह दृढ निश्चय हो गया था कि जो मेरे देश की रीति पुरानी चली आती है वह विलकुल अशुद्ध और अशास्त्रीय है तथा नवीन प्रणाली जिसको थोड़े दिनों से लोग व्यवहार कर रहे है वही ठीक है।

पुरानी रीति मेरे देश की यह है कि विवाह के बाद एक वर्ष के भितर तक द्विरागमन यानी गौने में शुक्रकी शुद्धि नहीं देखी जाती-और एक वर्ष के वाद अथात् तीसरे या पाचवे वर्ष में शुक्रकी शुद्धि देखी जाती है। तथा मार्ग फाल्गुन और वैशाख इन्ही महीनों में द्विरागमन विवाह के वाद होता है। तथा द्वितीय आगमन जब कभी होता है उसको दोंगा या द्व्यङ्ग यात्रा कहते है-उसमें सदैव राहु की ही शुद्धि देखते है-अर्थात् विवाह के साथ वधू आवे अथवा विवाह समयानतर जब कभी आवे पुनः उसके द्वितीय आगमन में राहु की शुद्धिही प्रधान है। सारांश यह कि एक वर्ष के भीतर वधू प्रवेश होने में शुक्र शुद्धि का लोप हो जाता है।

दूसरी रीति नई यह है कि विवाहानन्तर जबकभी स्त्री आवै तो बधू प्रवेश दोबारा जब आवै तब द्विरागमन और तीसरे मरतबे जब आवै उसको त्रयब्दयात्रा कहते हैं दूसरे में शुक्र और तीसरे में राहु की शुद्धि देखी जाती है-इसदूसरी रीति के चला ने वालों में प्रधान दो आदमी थे एक तो छपरे में त्रिविक्रम तिवारी ज्योतिषी और दूसरे जिला बलिया-सिकन्दरपुरमें रामगुलाम ज्योतिषी। इनमें पहले त्रिविक्रम तिवारी अपने जमाने के बहुत अच्छे विद्वान थे दोष यही था कि जद्दी थे जो बात मुहसे निकल जाय वह कैसी भी अनुचित हो परन्तु उसी को पुष्ट करना। और दूसरे वैसे विद्वान नहीं परन्तु "हुमायेत" में अवश्य थे।

जब मैं इस कार्य में पड़ा तो पहले पुस्तकों का देखना बहुत उचित था निर्णयसिन्धु-निर्णयामृत-मुहूर्तचिन्तामणि-मुहूर्तमार्तण्ड-मुहूर्ततत्व राजमार्तण्ड इत्यादि पुस्तकों में इसका प्रमाण खोजा। प्रमाण खोजने में जो बातें मुझे मिली वह विद्वानों के सामने उपस्थित करता हूं वे उसकी फैसला-अपनेही करलेवेंगें।

पुरानी पुस्तकों में कहीं भी दो प्रकरण द्विरागमन तथा वधू प्रवेश नामके नहीं है एकही प्रकरण चाहे कोई नाम हो दीखपड़ता है- किसी किसी नवीन ग्रथोंमें दो प्रकरण हैं। अबमैं प्रकरण भेदसे लिखे हुये वचनों को लिखताहूं।

मुहूर्तमार्तण्डमे एकही प्रकरण है।

वग्नादष्टिदिनान्ततः समसुनीर्ब्वंके घुपूर्ब्वत्वयुग्घस्रे भास्यपि हायने शरमिताद्वर्षात्परं स्वेच्छया। वैफामार्गासितेजगुः श्रुति युगोद्वाहर्क्षचित्राश्विनजियचैश्रानवमान्दिरोतिशि वधूसं वेशमङ्गेस्थिरे

विवाह के बाद सोलह दिन के भीतर २-४-६-८-१०-१२-१४-१६ इन

सम दिनों में और विषम में ५-७ ९ दिनों में, इसके बाद महीने के भीतर विषम दिन में, अनन्तर एक वर्ष के भीतर विषम मास में, एक वर्ष के बाद विषम यानी तीसरे और पांचवें वर्ष में वधूप्रवेश करना। बाद जिस वर्ष में इच्छा हो करना। वधू प्रवेशमें वैशाख फाल्गुन और मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष, श्रवण, धनिष्ठा रोहिणी मृगशिर मघा उत्तरा फाल्गुनी हस्त स्वाती अनुराधा मूल उत्तराषाढ़ उत्तरा भाद्रपद रेवती चित्रा आश्विनी और पुष्य, ये १६ नक्षत्र पुराना गृह, रातका समय और स्थिर लग्न प्रशस्त है।

इसके देखने से यह बात स्पष्ट है कि पहले वर्षकी गिनती विषम वर्ष में नहीं है क्योंकि पहले वर्षमें मास का विचार है वर्ष का नहीं।

निर्णय सिन्धु में दो प्रकरण हैं।

वधूप्रवेशः। जयतुङ्गे। मार्गशीर्षे तथा माघे माधवे ज्येष्ठ संज्ञके। सुप्रशस्ते भवेद्वेश्म प्रवेशो नवयोषिताम् १ नारदः। आरभ्योद्वाहदिवसात्षष्ठे वाप्य ष्टमे दिने। वधूप्रवेशः सम्पत्यै दशमेथ समेदिने २ संग्रहे—विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे दिने षोडशवत्सरान्तः ऊर्ध्वे ततोऽब्देऽयुजि पञ्चमान्तमतः परस्तान्नियमो न चास्ति। नारदः। समे वर्षे समे मासि यदि नारी गृहं व्रजेत् आयुष्यं हरते भर्तुः सानारी मरणं व्रजेत्। प्रयोग रत्नेतु। वधूप्रवेशः प्रथमे तृतीये शुभप्रदः पञ्चमकेथ-वान्हि द्वितीयके वाथ चतुर्थके वा षष्ठे वियोगामयदुः खदः स्यात् इत्युक्तं। तत्र मूलं चिन्त्यम्। वृद्धवशिष्ठोपि। षष्ठाष्टमे वा दशमे दिने वा विवाहमारभ्य वधूप्रवेशः। पञ्चाङ्ग संशुद्ध-दिनं विनापि विवाहवद्वाचरणेपि कार्यः। लल्लः। स्वभवनपुर प्रवेशे देशानां विप्लवे तथो द्वाहे। नववध्वा गृहगमने प्रति

शुक्रविचारणा नास्ति । मार्तण्डः । नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके । वधूप्रवेशे माङ्गल्ये नमौढ्यं गुरुशुक्रयोः ज्योतिः प्रकाशे । वामे शुक्रे नवोढायाः सुखं हानिश्च दक्षिणे । धनं धान्यं च पृष्ठस्थे सर्वनाशः पुरः स्थिते । नवोढायास्तु वैधव्यं यदुक्तं सम्मुखे भृगौ । तदेव विबुधैर्ज्ञेयं केवलन्तु द्विरागमे । पूर्वतोऽभ्युदिते शुक्रे प्रयायाद्दक्षिणापरे । पश्चादभ्युदिते चैव जायात्पूर्वोत्तरे दिशौ । व्यवहारतत्वे । पौष्णत्काभ्याच्चश्रवणाच्चयुग्मे हस्तत्रये मूलमघोत्तरासु । पुष्येच मैत्रे च वधू प्रवेशो रिक्तेतरे व्यर्के कुजे च शस्तः । व्यतीपाते च सङ्क्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि । श्राद्धं विना शुभं नैव प्राप्तकालोपि मानवः । तथा अमासंक्रान्ति विष्ट्यादौ प्राप्तकालेपि नाचरेत् ।

अथ द्विरागमनम् । मार्ग फाल्गुन वैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने । गुर्वादित्यविशुद्धौ स्यान्नित्यं पत्नीद्विरागमः । वादरायणः । नीहारांशु दिनोत्तरादितिगुरुब्रह्मानुराधाश्विनीशक्रे भास्करवायुविष्णुवरुणत्वाष्ट्रे प्रशस्ते तिथौ । कुम्भाजालिगते रवौ शुभकरे प्राप्तोदये भार्गवे जीवज्ञास्फुजितां दिने नव वधूवेश्मप्रवेशः शुभः ।

पहले मुहूर्तमार्तण्डे के श्लोक में जो बात लिखी है वही कुछ न्यूनाधिक भावसे दोनों प्रकरण में मिल कर हैं । पहले ही प्रकरण. में शुक्रशुद्धि लिख दी है. परन्तु यह भी लिखा है कि द्विरागमन में शुक्रशुद्धि देखना । माघ और ज्येष्ठ महीना भी वधू प्रवेश में लिखा है तथा द्विरागमन के प्रकरण के श्लोक में नववधूवेश्मप्रवेशः नवीन वधू का गृह प्रवेश लिखा है । ये बातें विचारने योग्य हैं । और पंचाङ्ग शुद्ध न होने पर वधू प्रवेश करने को लिखा है अर्थात वधू प्रवेश नक्षत्र होने से प्रवेश काल तो देखा ही जायगा यात्रा के मुहूर्त का लोप है ।

मुहूर्तचिन्तामणिः वधूप्रवेशः।

समाद्रि पञ्चादिङ्कादिने विवाहाद्वधू प्रवेशोष्टिदिनान्त राजे। शुभः परस्ताद्विषमाब्दमासदिनेत्त्ववर्षात्परतो यथेष्टम्। ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघानिले। बधूप्रवेशः सन्नेष्टोरिक्तारार्के बुधेपरैः २ ज्येष्ठेपातिज्येष्ठमथाधिके पतिंहन्त्यादिमे भर्तृ गृहेवधूः शुचौ। श्वश्रूं सहस्ये श्वशुरंक्षये तनुं तातं मधौ तात गृहे विवाहतः ३

इसकी टीका में विशेष वही श्लोक लिखे है जो र्निणयसिन्धु के है।

द्विरागमः। चेरद्थोजहायने घटालिमेषगेरवौ रवीज्यशुद्धि योगतः शुभग्रहस्य वा परे नृयुग्ममीनकन्यका तुलावृषे विलग्नके द्विरागमंलघुध्रुवे चेरस्रपे मृदूडुनि-१ दैत्येज्यो ह्यभिमुखदक्षिणे यादिस्याद्गच्छेयुर्नहि शिशुगार्भिणीनवाढाः। वालश्चेद्व्रजति विपद्यते नवोढाचेद्वन्ध्याभवतिच गार्भिणी त्वगर्भा॥ नगरप्रवेशे विषयाद्युपद्रवे क्रूरपीडनेविबुधतीर्थयात्रयोः नृपपीडनेववधूप्रवेशने प्रातिभार्गवो भवति दोषकृन्नहि-३ पित्र्ये गृहे चेत्कुचपुष्पसंभवस्तदानदोपः प्रतिशुक्रसंभवः भृग्वाङ्गिरो वत्सवशिष्टकश्यपात्रिणां भरद्वाजमुनेःकुले तथा ४-इति।

यदि विचार कर देखी जाय तो वेही बातें इन प्रकरणों में भी हैं।

इस प्रकरणके टीका में पीयूषधारा कारने जो लिखा है उस का अभिप्राय क्या है यह नहीं निकलता-उन्होंने लिखा है-

अथ द्विरागमनप्रकरणं व्याख्यायते तत्र पूर्वं नववधूप्रवेशे जाते तदनन्तरं परावृत्यापि पितृगृहमासाया अपि वध्वा यथेष्टवर्षाणिस्थितायाः पुनर्भर्तृगृहप्रवेशो द्विरागमनशब्द

वाच्यः अयमाचारः प्राच्योदीच्यं पाश्चात्यानामेवेति । अधुना वसरप्राप्तत्वात्तन्मुहूर्तं पञ्चचामरछन्दसाऽऽह

इसका अर्थ यह है जो स्त्री अपने पति के गृह में गई नव वधू प्रवेश हो चुका- और वह लौटकर पिता के गृह में आई तथा जितने दिन तक हो अपने पिता के गृह में रही पुनः पति गह में प्रवेश को द्विरागमन कहते हैं। यह पूर्व-उत्तर और पश्चिम के देश वासियों की चाल है । तो उसके लिये मुहूर्त होनाही चाहिये इस कारण द्विरागमन मुहूर्त लिखा है । इस लेख से स्पष्ट जान पड़ता है कि इस पक्ति को गोविन्द ने बड़े संकोच सेलिखा है क्योंकि जब द्विरागमन नाम रखा गया, और प्रकरण भी लिखागया तो उसका अर्थ समझाना भी आवश्यक है-और वह अर्थ जो, आचार नाम से लिखा है वह शास्त्ररीति से निकलता नहीं है ।

दूसरे यदि यह आचार ठीक होता तो उसका प्रमाण भी शास्त्रकारों ने लिखा ही होता ।

गोविन्द भटने अपने देश की रीति क्या है सो भी नहीं लिखी दूसरे मुहूर्त देखा जाय यात्रा का और नाम हो वधूप्रवेशका यह भी विचित्र बात है । इसके टीके मे लिखा है ।

ऋक्षोच्चये । तिष्यादित्यसमीरणादितिवसुत्र्युत्तराण्य-श्विनीरोहिण्यः शुभदाश्च वर्षमसमं मेषालिकुंभेरविः कन्या मन्मथमीनभे नववधूयाने वृषे तौलिके देवाचार्यसितेन्दुसौम्यदिवसे शुद्धेगुरौभास्करे । राजमार्तण्डे । नीहारांशुधनोत्तरादितिगुरुब्रह्मानुराधाश्विनीमूलाहस्तकरवारुणानिलहरित्वाष्ट्रूषुशस्ते तिथौ । कुंभाजालिगतेरवौशुभकरे प्रासोदयेभार्गवे सूर्ये कीटघटाजगे शुभदिनेपक्षेच कृष्णेतरे छित्वादिक्प्रतिलोमगौ बुधसितौ ललाटगंदिक्पतिंच,नीतागुणशालिनी नववधू

नित्योत्सवैर्मन्दिरम्। चैत्रेपौषे हरिस्वप्ने गुरोरस्ते मलिम्लुचे। नवोढागमनंनैव कृतेपञ्चत्वमाप्नुयात्।

जो प्रमाण गोविन्द ने लिखा हैं उन दोनों में नववधू पद दिया है और याने (यात्रा) दिया है प्रवेश नहीं लिखा हैं।इस कारण यह श्लोक द्विरागमन तथा प्रवेश मुहूर्त के हों यह किसी प्रकार नहीं निकलता। इस से यह सिद्ध है कि किसी जाति विशेष के भ्रमात्मक (चाल) रीति को देखकर मुहूर्त चिन्तामणि टीका कारने यह प्रकरण विना समझे लिख दिया। और शास्त्र का खोज नहीं किया। ग्रन्थकार रामाचार्यने बहुत ठीक लिखा है उनका अभिप्राय आगे चलकर स्पष्ट हो जायगा। जो श्लोक राज मार्तण्ड का लिखा है वह खण्डित है। ठीक श्लोक आगे लिखा जायगा।

निर्णयामृतजो इस मध्य देश का धर्म शास्त्र पञ्च गौड़ो का ग्रन्थ हैं उसमें द्विरागमन नामका एक ही प्रकरण है। जो राज मार्तण्ड में वचन लिखे हैं और जिनकों गोविन्द ने लिखा है वही निर्णयामृत में प्रमाण हैं। जैसे—

भर्तुः शोभनगोचरे हिमकरे (दिनकरे) नास्तेगते भार्गवे सूर्ये कीटघटाजगे शुभदिने पक्षेतुकृष्णेतरे। हित्वादिक्प्रतिलोमगौबुधसितौ लालाटगं दिक्पतिं चानीतागुणशालिनी नववधूर्नित्योत्सवैर्नन्दते। तथाच। नीहारांशुधनोत्तरादितिगुरुत्वाष्ट्रानुराधाश्विनीशाक्रेभास्करवायुविष्णुवरुण वाह्वे प्रशस्ते तिथौ। कुम्भाजालिगतेरवौ शुभकरे प्राप्तोदये भार्गवे जीवज्ञस्फुजितां दिने नववधू सद्म प्रवेशः शुभः।

इसी प्रकार के वचन सर्वत्र मिलते हैं जिनमें सर्वत्र नववधू इसी शब्द का प्रयोग है और यान यानी यात्रा इसका प्रयोग है प्रवेश कहीं नहीं लिखा हैं इसलिये ये द्वितीय आगमन के प्रवेश को कहते हों यह कथमपि नहीं हो सकता। बहुतों का कहना हैं कि

द्विरागमन द्वितीय बार के आने का नाम है प्रथमागमन को द्विरागमन कैसे कहा जाय। परन्तु पुरानी प्रथा के अनुसार प्रथमा गमन काही नाम द्विरागमन है। इस संदेह के निवृत्ति के लिये शास्त्रों में दो श्लोक लिखे हैं जिसको सब कोई जानते हैं परन्तु उसपर ध्यान नहीं देते।

प्रथमे गुरुशुद्धिः स्यात्शुक्रशुद्धिर्द्विरागमे। त्रिगमेराहुशुद्धिश्चचन्द्रशुद्धिश्चतुर्गमे।

इसमें पहले पदको किसी जगह ऐसा भी लिखा है कि "विवाहे गुरुशुद्धि स्स्यात्" इस श्लोक में जो शुक्रशुद्धिर्द्विरागमे लिखा है इसीको देखकर प्रथमे गुरुशुद्धिः स्यात इसपदके यथार्थ अर्थ न लगने से आजकल के नये पण्डितोंने पुरानी प्रथाका लोप करना शुरु कर दिया इसके लिये वचन पियूप धारा।

वात्स्यः। स्त्रीविवाहः कुलेनिर्गमः कथ्यते पुंविवाहः प्रवेशो वशिष्ठादिभिः। निर्गमा गादितो न प्रवेशो हितस्तत्रसंवत्सरांतोऽवधिः कीर्तितः। अन्यच। पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः सुतोद्वाहस्तु निर्गमः।

इसका अर्थ यह है कि स्त्री का विवाह-यात्रा कहलाता है और पुत्र के विवाह को प्रवेश कहते हैं यात्रा से पहले प्रवेश करना शुभ नहीं है। और प्रवेश की अवधि एक वर्ष तक है। इसी के अनुसार विवाहानन्तर एक वर्ष तक यात्रा नहीं देखी जाती केवल वधूप्रवेश काही मुहूर्त देखा जाता है। अतः द्वितीय यात्रा का मुहूर्त तीसरे पाचवें वर्ष में द्विरागमन के नाम से प्रसिद्ध है। और पुत्रों द्वाहानन्तर कन्यो द्वाह भी निषिद्ध लिखा है।

इस लिखे सब वचनों की व्यवस्था-

विवाह में जब कन्यादान कर्ता संकल्प कर देता है तो उससमय के बाद उस कन्या परसे उसका अधिकार चला जाता है और वह कन्या पिताके नगीच से उठकर वरके नजदका

चली जाती है इसीको प्रथम यात्रा कहते हैं इस समय अर्थात् विवाह में गुरु शुद्धिही कन्या के लिये प्रधान है इसी कारण प्रथमे गुरु शुद्धिः,, अथवा "विवाहे गुरु शुद्धिः" लिखा है परन्तु जब तक कन्या वरको पति रूपसे मान न लेवे तब तक वर का विवाह नहीं समझा जाता-वरका विवाह सप्तपदी हो जाने पर समझा जाता हैं इसी कारण

पूर्वं सप्तपदीविधेरधिगते दोषेत्त्रेवामृते देयान्यत्र विवाहितापिच बलाद्या विद्धयोर्निर्नचेत्" इत्यादि लिखा हुआ है

सप्तपदी में कन्या वरको पतिरूप से स्वीकार करती है तभी वरका विवाह समझा जाता है उसको कन्या का प्रवेश कहते है। इसी कारण प्रत्यक्ष जो प्रथम यात्रा है उसको द्विरागमन तथा प्रत्यक्ष द्वितीय यात्रा को त्र्यंग यात्रा कहना अत्यन्त प्राचीन शास्त्र शुद्ध प्रथा लोक प्रसिद्ध है।

आज कल मुहूर्त चिन्तामणिमें वधू प्रवेश और द्विरागमन नामक दो प्रकरण लिखा हुवा देखा जाता है यही लोगों को भ्रममें डाल देताहै परन्तु यह लेख अशुद्धहै। मुहूर्त चिन्तामणि मे एकही वधु प्रवेश प्रकरण दोनो मिल कर था दो प्रकरण नही था इस बात को नरायणाचार्य ने पियूषधारा के " उदेति यस्यां दिशि " इस यात्रा प्रकरण के श्लोक की टीका मे स्पष्ट लिख दिया है। इसके देखने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि किसी शास्त्रज्ञान शून्य पुरुष ने पीछे से दो प्रकरण लिखकर कर दिया है।

अब प्रत्यक्ष वधू का गृह प्रवेश तीन प्रकार का होता है नूतन वधू प्रवेश १ वधू प्रवेश २ विलंबित वधू प्रवेश ३ नूतन वधू प्रवेश वह है जो सोलह दिन के भीतर होता है वधू प्रवेश वह है जो एक वर्ष के भीतर होता है विलंबित वधू प्रवेश वह है जो एक वर्ष के बाद होता है। परन्तु वधू प्रवेश की

के पति गृह में प्रवेश करने के मुहूर्त का नाम है । वधू प्रवेश विना यात्रा के नहीं हो सक्ता इस कारण पितृ गृह से जाने का भी मुहूर्त होना आवश्यक है इसी पितृगृह से जाने का जो समय विचार है उसी को द्विरागमन मुहूर्त कहते हैं जिसका सन्देह सब किसी को रहता है ।

विवाह में अर्थात् १६ दिन के भीतर यात्रा नहीं देखी जाती केवल वधूप्रवेश के ही मुहूर्त का विचार होता है इसी लिये इसको नूतन वधूप्रवेश कहते हैं यहीं १ मुहूर्त चिन्ता मणि का पहला प्रकारण है इसमें यात्रा, समय की शुद्धि, महीना, किसी का नियम नहीं यह वैवाहिक हर महीनों में होता है । १६ दिन के बाद जो वधूप्रवेश उसको वधूप्रवेश ही कहते हैं वह विवाह के बाद विषम महीने में मार्गशीर्ष फाल्गुन और वैशाख में होता है इसमें पिता के गृह से चलने का मुहूर्त जिसको द्विरा गमन कहते हैं नहीं देखाजाता और पतिगृह में प्रवेश का मुहूर्त जिसे वधूप्रवेश कहते हैं वही देखा जाता है-शुक्र का विचार नहीं होता ।

इसके बाद विलंबित वधुप्रवेश जो एक वर्ष के बाद तीसरे पांचवें इत्यादि वर्षों में होता है उसको द्विरागमन कहते हैं उसमें पूर्वोक्त सब बातों के साथ साथ शुक्र की भी शुद्धि पृष्ठ वा सरूप देखी जाती है

इतनी व्यवस्था मैंने इस कारण लिखी है कि कोई पण्डित सन्देह करने वालों को यथार्थ इस बात को समझाते नहीं हैं शुद्ध रीति को छोड़कर लोक भ्रम में पड़कर अन्यथा आचरण कर क्लेश उठाते हैं । पुरानी रीति अभी बहुतों के मनसे जागृत है क्योंकि देशमें अभी बहुत प्राचीन पण्डित वर्तमान हैं जिन्होंने पुरानी रीति को नहीं छोड़ी है अब यदि नई रीति के अनुसार किसी ने अन्यथा की और कहीं उसको मंगल नहीं हुआ तो

वह शास्त्र और पण्डित दोनों को वदनाम करता है। ऐसे घटना तो ईश्वर की इच्छा से होती है।

दीपावली—और कार्तिक पूर्णिमा के नगीच भी वधूप्रवेश इत्यादि शुभ कार्य होते हैं इनकी इतनी प्रशंसा है कि दीपावली के समय कोई भी दोष वाधक नहीं है।

दीपोत्सवत्रले नैव कन्या भर्तृगृहंव्रजेत्। निर्णयामृते विवाहोपयोगिनिर्णये। नशुक्रदोषो न सुरेज्यदोषस्ताराबलं चन्द्रबलं चयोज्यम् नवानबोढागमनप्रयाणे दीपोत्सवे कार्तिकपौर्णमास्याम्—

उसकी बड़ी साफ २ व्यवस्था काश्यप संहिता में लिखी है जिसकी खोज में मैं हूं भगवान की दया होगी तो पुस्तक मिल जाने पर मैं पण्डितों को भेंट करूंगा-यदि इस व्यवस्था से लोगो को लाभ होगा तो मुझे बड़ी खुशी होगी।

श्री रामयत्न ओझा।

श्रा० शु० १ गुरौ—सं० १९७९

इष्ट शोधन व्यवस्था।

ज्योतिष में प्रधान तीन अंग है पहला सिद्धान्त दूसरा होरा तीसरा संहिता—इन तीनों के सम्पूर्ण मर्मज्ञ आज से १५०० वर्ष पहले वाराह मिहिर हुये थे उसके बाद आज तक किसी का प्रमाण नहीं मिलता। यह बात सर्ववादि सिद्ध है कि विना सिद्धां के फलित और संहिता का पूर्ण विद्वान कोई हो नहीं सक्ता कितना भी वह बड़ा पण्डित कहलावे परन्तु राशि का नाम उसका (.... ....) वही रहेगा।

बहुत अल्पज्ञ आज कल कह बैठते हैं कि भारतवर्ष की ग्रहगणना प्राचीन समय में तो ठीक थी परन्तु आज कल वह

अशुद्ध हो गई है। इसी प्रकार ज्योतिषीजी ने कुण्डली देख कर दो चार बार उलट पुलट किया और क दिया कि इष्ट काल अशुद्ध है इसकी शुद्धि के लिये छ महीना समय चाहिये। बस सुनते ही यजमान के होश उड़ जाते हैं कहां तो वह अपना फल पूछने गया और कहां उसकी कुण्डली ही अशुद्ध हो गई— उसको ज्योतिषीजी से पूछने का हौसला ही नहीं पड़ता कि पूछे। उसको पूछना चाहिये कि महाराज छ महीना इष्ट काल शुद्ध करने के लिये हैं तो फल बिचार करने के लिये बरसों का समय चाहिये। और आपने पाच मिनट भी खर्च नहीं किया और कुण्डली अशुद्ध कर दिया इसका कारण क्या है। परन्तु अपने गर्ज के मारे वह चुप लगा जाता है। अब इसका कारण सुनिये। कभी तो इष्ट काल अशुद्ध अवश्य रहता है। पर इसका पहचान बहुत दिनों पर होता है तुरंत नहीं; इष्ट काल कम होना चाहिये या अधिक, सन्देह स्थल में, इसका विचार बडा कठिन है। इसके लिये कई वर्ष की जरूरत है। आज कल के फलितज्ञ जो इस बात को कहते हैं उसका कारण दो है एक तो कुण्डली दिखलाने वाले ऐसी बात पूछते हैं जो बरसों बिचारने पर भी न निकले और ज्योतिषीजी के सामने एक टका पैसा भी रखते नहीं बनता। बिना कुछ लिये कहने में दोष भी लगता है शास्त्र भी निन्दा ही करता है ऐसी अवस्था में इष्टकाल अशुद्ध कह कर टाल देना बहुत ही जरूरी है।

परन्तु कुछ अल्पज्ञ ज्योतिषी इस बात को छोड़कर अन्यथा कहते है वे बाते ये हैं लग्न सम और नवांश भी सम हो तो झट कह देते हैं कि "ओजतदंशो पुरुषस्य जन्म" अर्थात् विषम लग्न नवांश में पुरुष का जन्म है सम लग्न नवांश में नहीं इस लिये लग्न अशुद्ध है "बाहरे बुद्धि की अजीर्णता" उनको वराह मिहिर का यह श्लोक नहीं याद आता कि—

स्तेनो भोक्ता पण्डिताढ्यो नरेन्द्रः क्लीवः शूरो विष्टिकृद्दासवृत्तिः पापोहिंस्रोभीश्च वर्गोत्तमांशे ष्वेषामीशा राशिवद्द्वादशांशैः ”

इसका अर्थ यह है । मेष के नवांश में चोर वृष के नवांश में खाने वाला मिथुन के नवांश में पण्डित-कर्क के नवांश में आढ्य, सिंह के नवांश में राजा कन्या के नवांश में क्लीव तुला के नवांश में वीर, वृश्चिक के नवांश में आज्ञाकारक, धनु के नवांश में दास, मकर के नवांश में पापी, कुम्भ के नवांश में हिंसक, और मीनके नवांश में निर्भय होता है, तथा इन राशियों के वर्गोत्तम में जन्म हो अर्थात लग्न तथा नवांश राशि एक हो तो इनका स्वामी होता है—इससे यह हुआ कि वृष लग्न में वृष के नवांश में, जन्म हो तो भोजन कराने वाला हो कर्क लग्न में कर्कांशमे जन्म हो तो महा धनी हो इत्यादि । यहां यह विचार करने की वात है कि जब सम राशि नवांश में पुरुष का जन्म ही नहीं होता तो आचार्य ने पुरुष का फल कैसे लिखा। इस वात को देख कर भी जो ऐसी अवस्था में कुण्डली को अशुद्ध बना देते हैं उनको क्या कहा जाय—अब इष्ट काल के शुद्धि के रीति का विचार देखिये किसी का मत है कि प्राण पद से इष्ट काल शुद्ध करना । उसकी रीति—

घटी चतुर्गुणा कार्या तिथ्याप्तैश्चपलैर्युता । शेषं पलार्धं द्विगुणं स्पष्टभास्करसंयुतम् । सूर्येचरादिराशिस्थे शून्यनागाब्धिसंयुतम् । स्पष्टं प्राण पदं ज्ञेयमोजभावेऽङ्ग शुद्धता—

दूसरे लिखते है कि—

प्राणात्रिकोणो प्रवदन्ति जन्म तदेव मान्द्यन्वितराशिको

णे । मान्द्यंशकात्कोणगतं विलग्नं तदंशकात्तन्मदत्कोणभे वा—

इन श्लोकों से यह बात निकलती है लग्न का और प्राणपद का अंश तुल्य हो तथा प्राणपद लग्न से विषमस्थान में हो तो लग्न को शुद्ध जानना—

अब ज़रा पारासर होरा की पुस्तक लेकर अप्रकाशक ग्रहों का फल देखिये प्राणपद के बारहो भाव में रहने का फल लिखा है जब सम भाव में प्राण पद होही नहीं सक्ता तब सम भाव का फल क्यों लिखा गया "क्योंकि सति कुड्य चित्रम्" कुछ ग्रन्थकारो ने गुलिक से इष्ट काल तथा लग्न की शुद्धि लिखी है तथा चन्द्रमा से भी इष्ट काल की शुद्धि लिखी है--उस में लिखा है कि--

लग्ने वले मांदिवशाद्विलग्नं चन्द्रे वले चन्द्रवशाद्विलग्नम् ।

अर्थात् लग्न बलवान हो तो गुलिक के वश तथा चन्द्रमा बलवान हो तो चन्द्रमा के वश लग्न शुद्ध करना—

अब विचार करने की बात है कि लग्न का यदि निश्चय ही होता तो शुद्धि किसकी देखी जाती ? जब लग्न ही नहीं तो बल किसका देखा जाय-इन परस्पर के विरुद्ध बातों के देखने से इसमें कुछ कहने का साहस नहीं होता--

अब उसके दोष का विचार कीजिये गुलिक बनाने की विधि दिनकी दूसरी और रात की दूसरी है गुलिक, उन लोगों के मत में दिन भर एक ही लग्न में रहता है और रात भर एकही किसी दूसरे लग्न में रहता है दिन में छ लग्न और रात में छ लग्न होते हैं तो तीन लग्नों ही से विषम स्थान में पड़ेगा तीन से नहीं। कल्पना किया जाय कि मेष से कन्या तक छ लग्न व्यतीत हुये और गुलिक कर्क में है तो बृष कन्या और कर्क से विषम स्थान में और मेष मिथुन और सिंह से सम स्थान में हुवा, इन लग्नों का मान कभी कभी २। घंटे से भी अधिक हो जाता है तो २

घंटे तक किसी मनुष्य का जन्म पृथ्वी पर न हो यहबात मनमें नहीं बैठती।

चन्द्राश्यधिपोयत्र तत्त्रि कोणमथापि वा तत्सप्तम त्रिकोणे वा भवेल्लग्नस्य निर्णयः।

एक प्रकार इष्ट शोधन का यह भी है। यह प्रसिद्ध है कि चन्द्रमा एक राशि में सवा दो दिन रहता है तब तक चन्द्रराशी श भी एक ही ग्रह हुआ वह जिस राशि में होगा उसके विषम स्थान में छ ही लग्न पड़ेंगे बाकी छ नहीं पड़ेंगे इससे यहबात हुई कि छ ही लग्न में सवादो दिन तक संसार में लड़का पैदा होगा छ लग्नों में नहीं। परन्तु यहबात असंभवसी जान पड़ती है क्योंकि एक एक लग्न सवादो घंटे का भी होता है

कुछ लोग गर्भेष्टशोधन करते हैं अर्थात जन्म समय जान कर गर्भ का दिन निकालते हैं और उस पर से गर्भ का समय निकालते हैं। जिस समय गर्भकालिक चन्द्र स्फुट जन्म लग्न स्फुट के तुल्य हो और गर्भ का लग्नस्फुट जन्म चन्द्र स्फुट के तुल्य हो जाय उसी इष्ट काल को शुद्ध कहते हैं। परन्तु एक तो जब तक जन्मष्टकाल नहीं बताया जाय तब तक काम ही नहीं चल सक्ता उसमें यदि गलती हुई तो सभी बात गड़बड़ा जायगी-और यदि ठीक जन्म समय का ज्ञान होतो शुद्ध करना भी विडंबना ही समझा जायगा इस कारण यह प्रकार अशुद्ध है। दूसरे गर्भ दिन निकालने की भिन्न भिन्न रीति है उनसे कई प्रकार का गर्भ दिन निकलता है यह भी सोचने की बात है। तीसरे २४० दिन से कम नहीं निकलेगा यदि किसी को ७ मास पर ही लड़का हुआ तो उसका गर्भ दिन नहीं निकल सक्ता इसी प्रकार यदि दश महीने से अधिक समय पर लड़का हुआ तो वह भी नहीं निकल सक्ता इससे भी यह रीति बिल्कुल अशुद्ध है दूसरे गर्भ चन्द्र जन्म लग्न के तुल्य हो तथा गर्भ लग्न जन्म चन्द्र के तुल्य हो इसके लिये कोई आर्ष प्रमाण नहीं। वाराह मिहिर ने गर्भ समय को जान कर जो जन्म काल ज्ञान

लिखा है उस से भी यह बात नहीं मिलती। इससे यह बात बहुतही स्पष्ट है कि इन प्रकारों के बनाने वाले बिल्कुल शास्त्र शून्य और धूर्तथे और सीधी रीति छोड कर अपनी मूर्खता को छिपाने के लिये नया प्रबन्ध बना दिया। इन प्रकारो से शुद्ध इष्ट काल भी अशुद्ध हो जाता है। वास्तव-इष्ट काल की शुद्धि कुण्डली या जन्म पत्र बनाना या बनवाना यह साधारण बात नहीं। यह काम पहले बडे बडे राजावों के यहां होता था बीसों अच्छे अच्छे ज्योतषी दरबार में पड़े रहते थे और जागीर पाते थे उसके ऊपर से राजावों से बराबर मदद मिलती थी उन को खाने पहिरने कुटुम्ब पालन और विवाहादिव्यय की चिन्ता थी ही नहीं केवल शास्त्र का विचार करना और फल का मिलाना यही उनका कर्तव्य था-जबसे इस भारत वर्ष में दरिद्रा देवी ने डेरा जमाया और लक्ष्मी ने पश्चिम की यात्रा की, यदि उनकी दया भी हुई तो अपने किसी चाह नहीं पर तबसे शास्त्र का रहस्य भी पुराने पण्डितों के साथ चला गया और नाम के पण्डित तथा शास्त्र बच गये तब से शास्त्र विचार प्रायः लुप्त हो गया। इष्ट काल शुद्धि के लिये आचार्यों ने मुक्त कण्ठ से बहले कहा है कि " यन्त्रैः स्पष्टतरोऽत्र जन्मसमयो वेद्यः" यानी यन्त्रो के द्वारा जन्म काल का ज्ञान करना यहीं उत्तम प्रकार है। आज कल पुरानी शैली के यन्त्र तो नष्ट हो गये भारत के सर्वस्व अंग्रेजों की दया से घड़ी मिलती है। प्रायः शिक्षितो में इसी के द्वारा इष्ट काल का ज्ञान किया जाता है इस लिये इसका भी वर्णन कर देना चाहिये "घडी क्या चीज है" यद्यपि हिन्दूस्तान में प्रायः सभी मनुष्य घडीका बर्ताव करते हैं परन्तु उसका ज्ञान रखने वाले बहुत ही कम सज्जन मिलेंगे, खैर, घडी एक नियत मान से बनती है जिसको मध्यम मान कहते हैं। इस भारत वर्ष में कौन कहै, सब देशों में दिनका व्यवहार सूर्य उदय से पुनः सूर्योदय तक समय का होता है परन्तु शास्त्रीय व्यवहार करने के लिये किसी ने उदय से उदय तक १ किसी ने मध्यान्ह

से मध्यान्ह तक २ किसी ने सूर्यास्त से सूर्यास्त तक ३ किसी ने मध्यरात्रि से मध्य रात्रि तक ४ किसी ने इष्ट समय से इष्ट समय तक माना है। इसको सावन दिन कहते हैं-- उदाहरण के लिये यदि मध्यान्ह से दिन कल्पना किया जाय तो, आकाशीय क्रान्ति वृत्त के जिस बिन्दु के साथ सूर्य किसी दिन याम्योत्तर-वृत्त में आया उसके बाद दूसरे दिन जब वह बिन्दु पुनः याम्योत्तर रेखा में आता है उस समय तक के समय को नाक्षत्र एक दिन कहते हैं उस समय सूर्य याम्योत्तर रेखा से कुछ पूर्व रहता है, जब सूर्य याम्योत्तर वृत्त में आता है तब एक सावन दिन व्यावहारिक होता है यह पूर्व कथित नाक्षत्र दिन से करीब ४ मिनट बड़ा होता है- अर्थात् यदि नाक्षत्र मान से इस सावन दिन को मापन करें तो कहेंगें कि चौबीस घंटा ४ चार मिनट का सावन दिन होता है और सावन मान से नाक्षत्र दिन को मापन किया जाय तो कहा जायगा कि एक नाक्षत्र दिन २३ घंटा ५६ मिनट का होता है।

यह सावन दिन रविगति के न्यूनाधिक होने से तथा उदय-मान के न्यूनाधिक होने से छोटा बड़ा होता है इस कारण पण्डितों ने अनुपात द्वारा " रविगतितुल्यासुयुतनाक्षत्र दिन के बराबर" एक मध्यम सावन दिन कल्पना किया-इसी के अनुसार शुद्ध घडी चलती हैं भारत वर्ष में रेल घडी-या तार घडी --जिसको आज कल स्टैंडर्ड टाइम कहते हैं इसी के अनुसार की घडी की चाल से होता हैं।

यहां यह भी यादरखना चाहिये कि भारत वर्ष में प्रत्येक तार घर में दिन में चार बजे तार द्वारा घडिया मिलाई जाती है परन्तु तार घरें के अफसर अपने आलस्य से घड़ियों को नहीं मिलाते और कितना काम बिगाड देते हैं। आज कल के हिन्दुस्तान में लोगो की यही चाल हो गई है कि जो काम उन

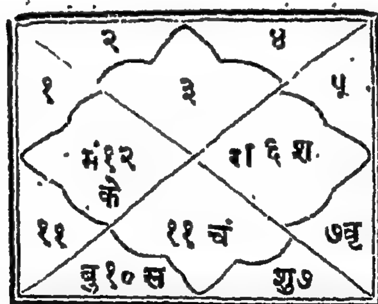
को सौंपा जाता हैं सिवा उसके बिगाडने के दूसरी बात नहीं जानते. बनाने वाले सैकड़ों में कोई मिलता है। जब कभी आवश्यक होतो सावधानी के साथ तार घर से या रेल घर से शुद्ध चाल की जो घडी हो उसको मिला लेना चाहिये--उस में अपने देश का और स्टेंडर्ड--समय का जो अन्तर (फर्क) हो उसको पूर्व या पश्चिम समझ कर जोड देना वा घटा देना चाहिये··तो वह समय अपने देश का समय होजायगा उसमें मध्यम स्पष्ट का अन्तर जिसको काल समी करण (Equation) कहते हैं उसका संस्कार करने से अपने देश में सूर्य घडी के अनुसार का समय होगा उस परसे अपने देश सम्बन्धि दिनार्ध वा दिनमान अथवा सूर्योदय घंटा जान कर इष्ट काल बनाना चाहिये यही इष्ट काल शुद्ध बनाने की रीति है। परन्तु इन बातों को इस देश के ज्यौतिषी बहुत कम जानते हैं क्यो कि ज्यौतिष के सिद्धान्तों को वे नहीं जानते-यदि सिद्धान्त जाना तो अंग्रेजी नहीं जानते अंग्रेजी भी जानते होंतो अच्छे गुरुकी सेवा नहीं करते इससे वास्तविक वस्तु का ज्ञान नहीं होता।

लड़का होने पर पण्डितजी को बुलाया गया और अपने घरकी घड़ीका समय बाबू साहबने उनको बतलाया पण्डितजी ने पञ्चाङ्ग का सूर्योदय घंटा निकाल इष्टकाल बना कर फल जो मनमें आया कह दिया और दक्षिणा लेकर घर चल दिया। इस प्रकार शुद्ध इष्टकाल नहीं जाना जासक्ता ऊपर लिखी रीति से किसी गणित विज्ञ ज्यौतिषी से इष्ट काल और लग्न बनवा लेना चाहिये--इसके बाद फल जिससे पूछा जाय वह अपने विश्वास पर है परन्तु इष्ट काल शुद्ध जानना यह सबको उचित है--हमने रेल घड़ीसे इष्ट काल बनाने की रीति अपने संवत् १९६७ के तथा संवत् १९७० के पञ्चाङ्ग में लिख दिया है।

अब जिस को अपने इष्ट काल में सन्देह हो उसके शुद्ध करनेकी रीति यह है कि पहले रंग रूप चिन्ह इत्यादि स्थूल फल देख कर समझना चाहिये कि जो लग्न कुण्डली में लिखा है उससे वह मिलता है कि नहीं यदि मिलता हो तो कुछ बात हीं नहीं-नहीं मिलताहो तो आगे पीछे के लग्नों से विचार कर किसी लग्न को पहले निश्चित करना चाहिये इसके अनन्तर दशा इत्यादि के द्वारा सूक्ष्म दैनिक मासिक वा वार्षिक फलों का विचार करके उस को देखना चाहिये कि वे फल उस समय मिलते हैं कि नहीं, और मिलते नहीं तो कितना दिन घट बढ़ कर होते हैं। जितना दिन घट बढ़ कर होते हों दशा के द्वारा अनुपात से तत्सम्बन्धि समय लाकर पुराने इष्ट काल में उस का संस्कार कर के ठीक इष्ट काल बनाना चाहिये सन्देह स्थल के लिये यही शुद्ध रीति है परन्तु यह शास्त्र प्रेमी राजा महाराजों का किया हो सक्ता है गरीबों का नहीं हो सक्ता- यही कारण है कि ज्योतिषियों की निन्दा प्रति दिन बढती जाती है और लोग अपनी भूल की ओर जराभी ध्यान नहीं देते। यह संक्षेप मे इष्ट शोधन व्यवस्था लिखी है इस से यदि इस देश के लोग लाभ उठावें गें तो मै अपने को कृत कृत्य समझूँगा सच्ची बात को लोग जाने और धूर्तों के फेर से बचै यही मेरा अभिप्राय है।

(१) प्राण पदसे इष्ट शोधन का प्रकार। संवत् १९७९ माघ कृष्ण त्रयोदशी सोमवार को सूर्योदय से २१ घडी २५ पलपर किसी का जन्म हुवा। इस समय इष्ट शुद्ध करने के लिये स्थूल सूर्य ९।२ लग्न २।५ प्राण पद १०।२२ यहां प्राण पद लग्न से नवमस्थान में है परन्तु लग्न और प्राण पद का अंश तुल्य नहीं है इससे अंश तुल्य करने के लिये दोनों का अंशात्मक अन्तर १७ इसका आधा ९ पल इष्टकाल में घटा दिया (क्योंकि प्राण पद का अंश लग्न के अंश से अधिक है जब

कम होगा तब लग्न के बराबर हो सकेगा) और उस को इष्ट काल कल्पना करके लग्न प्राणपद और सूर्य साधन किया। इष्ट २१। १६। सूर्य ९। १। २७। ३२ लग्नम २। ३। ४९। ३८ प्राण पद १०। ३। २७। ३२। पुनः लग्न प्राणपद का अन्तर २२। ६ इसका आधा ११।३ विपल इष्ट काल में जोड़ा २१। १६।११। ३ इसको इष्ट काल कल्पना किया यहां इस इष्ट काल पर पहलेही के सूर्य के तुल्य स्पष्ट सूर्य मानालिया तो इष्ट २१।१६।११।३ सूर्य ९।१।२७। ३२ लग्न २। ३। ५०। ४३ प्राणपद १०। ३।४६। ३८ हुवा फिर लग्न और प्राणपद का अन्तर किया ०। १। ५ हुवा इसका आधा ०। ०। ३२। ३० इस को इष्ट कालमे जोड़कर इष्ट काल माना २१।१६। ११। ३५। ३० इस पर लग्न २। ३। ५०। ४७। प्राण पद १०। ३। ५०। ४३। फिर अन्तर ०। ०। ०। ४। इसका आधा इष्ट कालमे संस्कार किया २१। १६। ११। ३७। ३०। यह इष्ट काल शुद्ध हुआ क्यों कि स्पष्ट सूर्य ९। १। २७। ३२ स्पष्ट लग्न २। ३। ५०। ४७ प्राणपद ११। ३। ५०। ४७ इस इष्ट काल पर देखा जाता है कि लग्न और प्राण पदका अंशादि तुल्य है और प्राणपद लग्न से त्रिकोण में भी पड़ता है इससे यही २१। १६। ११। ३७। ३० इष्ट काल शुद्ध हुवा——इस समय की कुण्डली



यहां लग्न चन्द्रराशीश से त्रिकोण में नहीं है इस कारण

चन्द्रराश्यधिपोयत्र तत्त्रिकोणमथापिवा ।
तत्सप्तमत्रिकोणेवा भवेल्लग्नस्य निर्णयः ॥

इस प्रकार से अशुद्ध है। चन्द्रमा कर्क के नवांश में है इससे

नवांश के त्रिकोण में भी लग्न के न होने से " तद्दृशकात्तन्म द्कोणभवा" इससे भी लग्न अशुद्ध है। इस दिन का दिनमान २६। १७ इस पर शुद्ध गुलिकेष्ट १९। ५। ९। १७ गुलिक लग्न १। २१ यहां गुलिक लग्न और गुलिकांश दोनो से त्रिकोण में लग्न के न होने से लग्न अशुद्ध है।

गर्भेष्ट शोधन करने के लिये सूर्य ९। १। २७। ३२ लग्न २। ३। ५०। ४७ चन्द्रमा ७। १०। ४७। १० इन पर से गर्भ दिन जानने की रीति।

जन्मोत्थ व्यङ्गेन्दुलवा घटा १४ सा तयां १६ शयुक्ता ध्रुवैः प्रयुक्ताः २४६ स्याज्जन्मगर्भान्तरवासरौघस्त्वनेनं हीनो जनिसंभवो गणः।

इसके अनुसार गर्भाहर्गण २६०। ११ निकला तिथि २६४ निकली इस परसे सं १९७९ वैशाख शुक्ल ३ रविवार को गर्भ दिन निकला परन्तु यह अहर्गण मध्यम मान से निकलता है और शोधन क्रिया स्पष्ट मान से होती है स्पष्टमान से जो गर्भेष्ट का नियम लिखा है उसका रविवार को संभव नहीं इससे चतुर्थी सोमवार को गर्भ दिन कल्पना किया। गर्भेष्ट शोधन का नियम यह है कि जन्म कालिक लग्न गर्भ का चन्द्र और जन्म कालिक चन्द्रमा गर्भ का लग्न होता है। इस कारण जब लग्न मिथुन है तो मिथुन का चन्द्रमा होना चाहिये तथा जन्म चन्द्र धनूराशि में है इसलिये लग्न गर्भ का धनु होना चाहिये। इस विचार से जन्मचन्द्रको गर्भ लग्न का लग्न मानकर प्रातः कालीनहीं सूर्य पर से गर्भेष्ट निकाला गया सूर्य ०। १७। ११। ४१ लग्न ८। १०। ४७। १०

अर्कभोग्यस्तनोर्भुक्त कालान्वितो ।
युक्तमध्योदयोभीष्टकालो भवेत् ॥

इस रीति से इष्ट काल ४२। ३२। ~~४७~~। २८। ४१ इस पर स्पष्ट

सूर्य ०। १७। ५८।३ चन्द्र स्पष्ट २। १२।४५। ५४ इसको जन्म लग्न कल्पना कर सूर्य ०। १ २७। ३२ से इष्ट काल निकाला तो जन्मेष्ट २२। ५३। २०। ३७। २० हुवा। इस पर सूर्य ३। १। २९। ११ चन्द्रमा ८। ११। ९। १२। इस चन्द्रमा को गर्भ लग्न कल्पना कर गर्भेष्ट निकाला ४२। ३०। ४३। ४६। १८ इस पर सूर्य ०।१७।५२।१ चन्द्रमा २। १२। ४५। १७ इस को जन्म लग्न कल्पना कर सूर्य ९। १। २९। ११ पर से जन्मेष्ट निकाला। २२। ५२। ५६। ५०। २० इसपर सूर्य ९।१।२६।११। चन्द्रमा ७। ११। ९। ७ इस पर से गर्भेष्ट सूर्य ०। १७। ५२। १ से निकाला तो भोग्य काल १६४। ५२।६।३४ भुक्त काल ३७। ५१। २। ५६। योग ३। २२। ४३। १२। ३० मध्योदय ३६। ८ इष्ट काल ४२। ३०। ४३। १२। ३० इस पर सूर्य ०। १७। ५२ १ चन्द्रमा २। १२। ४५।१७ लग्न ८। ११। ९। ७ इस पर से जन्मेष्ट काल के लिये सूर्य ९। १। २९। ११ लग्न २। १२। ४५। १७। इष्ट इष्टकाल २२। ५२। ५६। ५०। २० चन्द्रमा ८।११। ९। ७ इससे शुद्धेष्ट २२। ५२। ५६। २०। २० हुवा। यह इष्ट काल और पूर्व इष्ट काल दोनों बराबर न होने से दोनों प्रकार अशुद्ध है।

कई प्रकारों से जो भिन्न भिन्न जन्म दिन निकलते हैं इस कारण भी भिन्न भिन्न इष्ट काल निकलेगा इससे इष्ट शोधन के सब प्रकार अशुद्ध है।

इष्टशोधन के प्रकार

प्राणात्रिकोणे प्रवदन्ति जन्म तदेव मान्द्यन्वितराशिकोणे
शशांकसंयुक्तभकोण राशौ तदंशकात्तन्मदकोण भेवा ॥ १ ॥
लग्ने बले मान्दिवशाद्विलग्नं चन्द्रेबले चन्द्रवशाद्विलग्नम्
मान्द्यंशकात्कोणगतं विलग्नं तथैव तत्सप्तमतश्च वेद्यम्॥ २॥
चन्द्राश्यधिपो यत्र तत्त्रिकोणमथापिवा
तत्सप्तमात्रिकोणेवा भवेल्लग्नस्य निर्णयः ॥ ३ ॥
गर्भ लग्न समं जन्म चन्द्रमानं प्रकीर्तितम्

गर्भे चन्द्रसमं जन्मलग्नमानं तथैवहि ॥ ४ ॥ इति इष्ट शोधन व्यवस्था ।

अथ दत्तक मुहूर्त व्यवस्था ।

तत्र अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इति सर्वत्र प्रसिद्धत्वात् पुत्र रहितःमृतपुत्रोवा "अपुत्रो मृत पुत्रोवा इत्यादि" शौनकोक्तेन पुत्र प्रतिग्रहं कुर्यात् अपुत्रेणैव कर्तव्यः पुत्र प्रतिनिधिः सदा पिण्डोदकक्रियाहेतोः यस्मात्तस्मात्प्रयत्नतः। इत्युक्तः। यद्यपि शास्त्रे त्रयोदशविधाः पुत्रा उक्ताः तथापि कलौ "दत्तौरसे तरेपान्तु पुत्रत्वेन परिग्रहः" इति शौनकोक्तेन दत्तकौरसभिन्नानां पुत्रत्वे न निषेधात् औरसाभावे दत्तको गृहीतव्यइति प्राचीनानां सिद्धान्तः सोपि स्वसमानगोत्रश्चेन्मुख्यः समान गोत्रजाभावे पालये दन्य गोत्रजम्" इत्युक्तेः। तत्र परगोत्रोवा पिभागिनेयो दौहित्रो वा द्विजानां न दत्तको भवितुमर्हति शूद्राणान्तु भवति "दौहित्रो भागिनेयोवा शूद्राणां विहितः सुतः" इति स्मरणात्। पिण्डोदकक्रिया हेतोरित्युक्तेः वर्तमाने औरसपुत्रे तस्य पातित्यादि संभावनायां पिण्डदानाद्याधिकाररहित्येन पुरुषः पुत्रप्रति निधिंकुर्यात इति शास्त्र सिद्धान्तः तथा क्रीतास्त्री न स्त्रीभवितुमर्हति तत्पुत्रो वा नपिण्ड दानाद्यधिकारीति। यथा

क्रयक्रीतातु या नारी नसापत्न्यभिधीयते।
न सा देवे न सा पित्र्ये दासीन्तां कवयो विदुः ॥१॥
अनिन्दितैः स्त्री विवाहैः अनिन्द्या भवति प्रजा॥
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निद्यां विवर्जयेत् ॥२॥

इत्यनेन वर्तमानेऽपि क्रीतोत्पन्नपुत्रे दत्तको गृहीतव्य इति।
दत्तकलक्षणे मनुः

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि।
सदृशं प्रीति संयुक्तं सज्ञेयोदत्रिमः सुतः॥

इत्यनेन माता पिता उभौवा संकल्प पूर्वकं यं दद्यातां स एवदत्तको भवितुमर्हति। पत्युरभावे तदाज्ञया विधवा तत्पत्न्यपि दातुं प्रतिगृहीतुंवा शक्नोति यथा "नत्वेवैकं पुत्रं दद्यात् प्रति गृह्णीयाद्वाः न स्त्री पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानं द्भर्तुः" इति वशिष्ठवचनात्। एवं सिद्धे शास्त्रतोदत्तकग्रहणाधिकारे तन्मुहूर्तविचार आवश्यकः सर्वत्र कार्येषु जातकेषुच लग्नवलेनैव शुभाशुभ फलोक्तेः। तत्र दत्तक विधानवाक्यानि कालिकापुराणे दत्तकमीमांसायाञ्च।

"दत्ताद्या अपि तनया निजगोत्रेण संस्कृताः।
आयान्ति पुत्रतां सम्यक् अन्यवीजसमुद्भवाः॥
पितुर्गोत्रेणायः पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपते।
आचूडान्तं न पुत्रः सः पुत्रतां याति चान्यतः॥
चूडाद्या यदि संस्काराः निजगोत्रेण वै कृताः।
दत्ताद्यास्तनयास्तेस्युरन्यथा दास उच्यते॥
उर्ध्वन्तु पञ्चमाद्वर्षान्नदत्ताद्याः सुता नृप।
गृहीत्वा पञ्चवर्षीयं पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत्॥
सर्वास्तु कुर्यात्संस्कारान् जातकर्मादिकान्नरः॥

इत्यादि वचनेन यद्यपि स्वगोत्रेण चूडाकरणादि संस्कार संस्कृतोपि दत्तकोभवितुर्महति तथापि जातकर्मादि

संस्कृतस्य विशेषयोग्यतादर्शनात सद्योत्पन्नस्यापि दत्तकत्वेन प्रतिग्रहात् न मुहूर्त विचार आवश्यकः । परन्तु यथा विलम्बित जातकर्मणि तन्मुहूर्तविचारस्यशास्त्रेषूपलब्धेः विलम्बितनवधूप्रवशे तृतीयवर्षादौ द्विरागमाख्ययात्रामुहूर्तस्य गनाविचारात् तुल्यन्यायेनात्रापि सद्योत्पन्नस्यालाभे कारणान्तरण वा मुहूर्त विचार आवश्यकः सद्योत्पन्नग्रहणेऽपि शास्त्रे लग्नबलस्यैव सर्वत्र प्राधान्यात् "लग्न लक्षगुणान्वित" मित्यादौ लग्नबलविचार आवश्यकः । अन्यत्रतु मुहूर्तपूर्वको लग्नविचारः । तत्र जातकर्ममुहूर्तविचारवत् नमासादि विचारः " किन्तु सत्समयसल्लग्नविचार एव समुपयुक्तः ।

व्यतीपातेच संक्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि
श्राद्धं विना शुभंनैव प्राप्तकालेपिनाचरेत्
अमा संक्रान्ति विष्ट्यादौ प्राप्तकालेपि नाचरेत्

इति पीयूषधारास्थवचनादिमानि-आवश्यकत्वेपि शुभकर्मनिषेधकवस्तूनि । आदिशब्दात् कुलिकादयोपि मुहूर्त दोषा सर्वदा चिन्त्याः । दत्तकग्रहणमुहूर्तस्तु "पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत्" तथा "जातकर्मादिकान्नर" इत्यादि विचारात जातकर्म मुहूर्त एव पुत्रेष्टियागस्य विधानात् जातकर्म मुहूर्त एव दत्तकग्रहणमुहूर्तो भवितुमर्हति नान्यत् तद्यथा

तज्जातकर्मादिशिशोर्विधेयं
पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेह्नि
एकादशे द्वादशकेपि घस्त्रे

मृदुध्रुवक्षिप्रचरोडुषु स्यात्

अत्रतच्छब्दार्थः

जातस्य पुत्रस्य दुष्टसमय लाभत्वेन पितुः

विदेशादिस्थितिवशेन विलम्बिते जातकर्मणि वा जन्मसमयादन्यत्र दत्तकग्रहणेन एतन्मुहूर्ते-औरसस्य दत्तकस्य वा विलम्बितं जातकर्म पुत्रेष्टिरूपं कुर्यात् इति मुख्यः पक्षः वस्तुतस्तु प्रतिगृहीतृगोत्रेण चूडा करणादिसंस्कार संस्कृतस्यैव दत्तकपुत्रत्वेन परिग्रहात् दत्तकग्रहणस्य जन्मानन्तरं चूडाकरणात् प्रागेव विशेष विधानात् शुभयाग विशिष्टस्यैव लग्नस्यावश्यकता । सत्यवकाशे तिथिदिन नक्षत्र योग करण मासपक्षर्त्वयनगुरु शुक्रबाल्यवृद्धास्तमकरसिंहस्थ गुरु ग्रहणादयोपि दोषा स्त्याज्याः । आवश्यकत्वेतु सर्वत्र लग्न शुद्धिमात्रम् ।

- आवश्यकत्वन्तु चूडाकर्मणि बहूनामेकत्रसमावेशः

उपनयने कालातिक्रमत्वम् । पठनयोग्यत्वम् । शुद्ध काल लाभश्च । विवाहे कन्यायाः ऋतुकाल प्राप्तिः योग्यवर लाभः । (वरयोग्यताच विद्यावयोधन कुलशीलघटित मेलापकादि विशेषता) पित्रोर्मरणसन्देहः द्विरागमनकन्यायाः वयोऽधिकत्वम् । दत्तक ग्रहणे दातुः प्रतिगृहीतुर्वा मरणभयम् योग्यबालकलाभः कालान्तरप्रतीक्षायां दातुरस्वीकृतिप्रपञ्च अयोग्यताधिकारभीतिश्चेत्यादि । देशोपद्रवादिकमपि आवश्यक विषयः तथा व्यावहारिः संस्कारभास्करदैव

रञ्जनादिषु प्रसिद्धोदत्तक ग्रहणमुहूर्तः शिष्टाद्दतत्वात् समुपयुक्तः सयथा

हस्तादिपञ्चकभिषग्वसुपुष्यभेषु
सूर्येन्दुभौजगुरुभार्गववासरेषु
रिक्ताविवर्जिततिथिष्वलिकुंभलग्ने
सिंहे वृषे भवति दत्तपरिग्रहोयम्

स्थिरे लग्ने पञ्चेष्टखेटोऽपि लग्ने इत्युक्तः पञ्चेष्टखेटलाभे व स्वादिवत् द्विस्वभावलग्नेऽपि दत्तको गृहीतव्यः। एवं सर्वेषु मासेषु विष्णुसुप्तौ दक्षिणायने गुर्वास्तादिदोष समयेऽपि "गर्भाधानान्नाशनान्तेषु न गुरू सितयो र्बाल्यवार्धकमौढ्यं जन्मास्तकालस्यगोधाद्वारि गुरुमयनं याम्यमूनाधिमासौ एत च्चौलादिप्रकृत्भेत्"।

इति मुहूर्त मार्तण्ड वचने न गृहीतो दत्तको भवितुमर्हति। सर्वत्र लग्नशुद्धौतु यथा घटित विचारे अष्टविधमेलापक गुणानयने "अष्टौन्दुर्ध्वे गुणे कयं शुभमिति वदता चार्येण सत्यपि गुणहीने क्वचित्कूटे न तद्दोषशंकामभिधायि तथा त्रापि पञ्चाधिकेष्ट खेट लाभे नाष्टमस्थानादेर्विशेष शुद्धिगवश्यकीति चिन्त्यते एवं निषिद्धस्थानास्थितावपि स्वामियोगात् तत्प्रावल्यात् न स्वस्वामिनोरन्नस्थानं दुष्टम् "वर्गोत्तमस्वपरगेषु शुभंयदुक्तं तत्पुष्टमध्यलघुताऽशुभ मुत्क्रमण" तथा

उच्च त्रिकोण स्वसुहृच्छत्रुनीचगृहार्कगैः
शुभं सम्पूर्णपादोन दलपादलपकानलम्

योभावः स्वामि सौम्याभ्यां युक्तो दृष्टोयमेघते
पापैर्दृष्टयुतैर्नाशं मिश्रैर्मिश्रफलं वदेत्

इत्यादिवचनात् अत्र लग्नतः केन्द्रत्रिकोण लाभेषु शुभ ग्रहाः त्रिषडाये षु च पापाः अष्टमं शुद्धम् गृहीतुरष्टमादिरहितं भाग्य योगधनवत्वादियोगसंवलितं पञ्चमशुद्ध्यादि युतं लग्नम् । इः विलग्नशुद्धौ द्रष्टव्यमिति । अत्रहि द्विरागमने दृशोधनदत्तकग्रहणमुहूर्तव्यवस्थासु या काचित् त्रुटिः साविबुधैः कृपायां पूरणीया इति श्रीरामयत्न शर्मणः प्रार्थना।

